जैन सप्तभङ्गी : आधुनिक तर्कशास्त्र के सन्दर्भ में

भिखारी राम यादव

हमारी भाषा 'विधि' और 'निषेध' से आवेष्टित है। हमारे सभी प्रकथन 'है' और 'नहीं है' इन दो ही प्रारूपों में अभिव्यक्त होते हैं। भाषाशास्त्र प्रकथन के 'विधि' और 'निषेध' इन दो ही मानदण्डों को अपनाता है। किन्तु जैनदर्शन 'विधि' 'निषेध' के अतिरिक्त एक तीसरे विकल्प को भी मानता है, जिसे अवक्तव्य कहते हैं। जैनदर्शन की अवधारणा है कि वस्तुएँ अनन्तधर्मात्मक हैं। प्रत्येक वस्तु सत्-असत्, नित्य-अनित्य, एक-अनेक आदि विरुद्ध धर्मों का पुंज है। इन परस्पर विरुद्ध धर्मों का युगपत् प्रतिपादन 'विधि' और 'निषेध' रूपों से असम्भव है, क्योंकि भाषा में ऐसा कोई क्रिया-पद नहीं है, जो वस्तु के किन्हीं दो धर्मों का युगपत् प्रतिपादन कर सके। इसीलिए जैनदर्शन में एक तीसरे विकल्प की कल्पना की गयी है, जिसे 'अवक्तव्य' कहा जाता है। इस प्रकार स्यादस्ति (विधि), स्यान्नास्ति (निषेध) और स्यात् अवक्तव्य (अवाच्य)—ये जैन दर्शन के तीन मौलिक भंग हैं। इन्हीं तीन मूलभूत भङ्गों से जैनदर्शन में चार यौगिक भङ्ग तैयार किये गये हैं। तीन मूल और चार यौगिक भङ्गों को मिलाने से सप्तभङ्गी बनती है, जो निम्न हैं—

१. स्यात् अस्ति।
२. स्यात् नास्ति।
३. स्यात् अस्ति च नास्ति।
४. स्यात् अवक्तव्य
५. स्यात् अस्ति च अवक्तव्य।
६. स्यात् नास्ति च अवक्तव्य।
७. स्यात् अस्ति च नास्ति च अवक्तव्य।

अब प्रश्न यह है कि क्या सप्तभङ्गी के ये सातों भङ्ग तर्कतः सत्य हैं? क्या इनकी सत्यता, असत्यता जैसी दो ही कोटियाँ हो सकती हैं, जैसा कि सामान्य तर्कशास्त्र मानता है? क्या ये तार्किक प्रारूप (Logical Form) हैं? क्या इन भङ्गों का मूल्यांकन संभव है? आदि। किन्तु इतना तो निर्विरोध सत्य है कि जैन-सप्तभङ्गी एक तार्किक प्रारूप है। उसके प्रत्येक भङ्ग में कुछ न-कुछ मूल्यवत्ता है। इसलिए सप्तभङ्गी की आधुनिक बहुमूल्यात्मक तर्कशास्त्र के परिप्रेक्ष्य में विवेचना आवश्यक है।

सर्वप्रथम, सप्तभङ्गी द्वि-मूल्यात्मक (Two-valued) नहीं है। इसलिए इसका विवेचन द्वि-मूल्यीय तर्कशास्त्र (Two-valued Logic) के आधार पर करना असंभव है; क्योंकि द्वि-मूल्यीय तर्कशास्त्र सत्य और असत्य (Truth and False) ऐसे दो सत्यता मूल्यों पर चलता है। जबकि जैन-सप्तभंगी में असत्यता (Falsity) की कल्पना नहीं है, यद्यपि उसके प्रत्येक भङ्ग में आंशिक सत्यता है, किन्तु उसका कोई भी भङ्ग पूर्णतः असत्य नहीं है। दूसरे, द्वि-मूल्यीय तर्कशास्त्र के दोनों मानदण्ड निरपेक्ष हैं, किन्तु जैन तर्कशास्त्र इस धारणा के विपरीत है अर्थात् जैन तर्कशास्त्र के अनुसार जो

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भी कथन निरपेक्ष होगा, वह असत्य हो जायेगा। इसीलिए जैन तर्कशास्त्र केवल सापेक्ष कथन को ही सत्य मानता है। वस्तुतः सप्तभङ्गी के प्रत्येक भङ्ग सापेक्ष हैं, इसलिए सप्तभङ्गी में जो भी मूल्यवत्ता निर्धारित होगी, वह सापेक्ष होगी।

इस प्रकार सप्तभङ्गी द्विमूल्यात्मक नहीं है। किन्तु क्या वह त्रि-मूल्यात्मक है? ऐसा कहना भी ठीक नहीं लगता कि सप्तभङ्गी त्रि-मूल्यात्मक (Three Valued) है। आधुनिक त्रि-मूल्यीय तर्कशास्त्र से उसकी किसी प्रकार तुलना ठीक नहीं बैठती है। त्रि-मूल्यीय तर्कशास्त्र में कुल तीन मानदण्डों की कल्पना की गयी है—सत्य, सत्य-असत्य (संदिग्ध) और असत्य। सत्य वह जो पूर्णतः सत्य है, कथमपि असत्य नहीं हो सकता है। असत्य वह जो पूर्णतः असत्य है, जो किसी प्रकार भी सत्य नहीं हो सकता है, और संदिग्ध वह जो सत्य भी हो सकता है और असत्य भी। किन्तु वह एक साथ दोनों नहीं है। वह एक बार में एक ही है अर्थात् वह या तो सत्य है या असत्य है। किन्तु उसका अभी निर्णय नहीं हो पाया है। इसी संदिग्धता की तुलना अवक्तव्य भङ्ग से करके कुछ विद्वान् जैन सप्तभङ्गी को त्रि-मूल्यात्मक सिद्ध करते हैं। किन्तु यह भूल जाते हैं कि अवक्तव्य की संदिग्धता से कोई तुलना ही नहीं है। अवक्तव्य में अस्तित्व और नास्तित्व दोनों ही एक साथ हैं, किन्तु उनका प्रकटीकरण असम्भव है। जबकि संदिग्धता में दोनों नहीं हैं। उसमें तो एक ही है, वह या तो सत्य है या असत्य है और उसे प्रकट किया जा सकता है। दूसरे वह संदेह या संभावना पर निर्भर है, जबकि अवक्तव्य पूर्णतः सत्य है। उसमें संदेह या संभावना का लेशमात्र भी समावेश नहीं है। तीसरे द्वि-मूल्यात्मक तर्कशास्त्र में एक तीसरे मूल्य असत्यता (०) की कल्पना है, जो जैन सप्तभंगी के विपरीत है। इसका विवेचन अभी हमने ऊपर किया है, साथ ही हमने यह भी स्पष्ट किया कि सप्तभंगी में सापेक्ष मूल्य का ही निर्धारण किया जा सकता है, निरपेक्ष का नहीं। परन्तु त्रि-मूल्यात्मक तर्कशास्त्र निरपेक्ष मूल्यों पर ही निर्भर करता है।

इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि जैन सप्तभङ्गी त्रि-मूल्यात्मक नहीं है। किन्तु मूल प्रश्न यह है कि क्या इसे सप्तमूल्यात्मक या बहुमूल्यात्मक कहा जा सकता है? यद्यपि आधुनिक तर्कशास्त्र में अभी तक कोई भी ऐसा आदर्श सिद्धान्त विकसित नहीं हुआ है, जो कथन की सप्तमूल्यात्मकता को प्रकाशित करे। परन्तु जैन आचार्यों ने सप्तभङ्गी के सभी भङ्गों को एक दूसरे से स्वतन्त्र और नवीन तथ्यों का प्रकाशक माना है। सप्तभङ्गी का प्रत्येक भङ्ग वस्तु-स्वरूप के सम्बन्ध में नवीन तथ्यों का प्रकाशन करता है। इसलिए उसके प्रत्येक भङ्ग का अपना स्वतन्त्र स्थान और स्वतन्त्र मूल्य है। वस्तुतः प्रत्येक भङ्ग के अर्थोद्भावन में इस विलक्षणता के आधार पर ही सप्तभङ्गी को सप्तमूल्यात्मक कहना सार्थक हो सकता है। इस संदर्भ में जैन-दार्शनिकों के दृष्टिकोण पर गंभीरता पूर्वक विचार करना अपेक्षित है।

जैन आचार्यों ने सप्तभङ्गी के प्रत्येक भङ्ग को पृथक्-पृथक् दृष्टिकोण पर आधारित और नवीन तथ्यों का उद्भावक माना है। सप्तभङ्गीतरंगिनी में इस विचार पर विस्तृत विवेचन किया गया है। वहाँ कहा गया है कि प्रथम भङ्ग में मुख्य रूप से सत्ता के सत्व धर्म की प्रतीति होती है और द्वितीय भङ्ग में असत्व की प्रमुखतापूर्वक प्रतीति होती है। तृतीय 'स्यादस्ति च नास्ति' भंग में सत्व, असत्व की सहयोजित किन्तु क्रम से प्रतीति होती है, क्योंकि प्रत्येक वस्तु में एक दृष्टि से सत्व धर्म है, तो अपर दृष्टि से असत्व धर्म भी है। चतुर्थ अवक्तव्य भङ्ग में सत्व-असत्व धर्म की सहयोजित

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

किन्तु अक्रम अर्थात् युगपत् भाव से प्रतीति होती है। पञ्चम भंग में सत्व धर्म सहित अवक्तव्यत्व की, षष्ठ भंग में असत्व धर्म सहित अवक्तव्यत्व की और सप्त भंग में क्रम से योजित सत्व-असत्व सहित अवक्तव्यत्व धर्म की प्रतीति प्रधानता से होती है। इस तरह प्रत्येक भंग को भिन्न-भिन्न दृष्टि-बिन्दु वाला समझना चाहिए।[1]

इस प्रकार स्पष्ट है कि सप्तभंगी के प्रत्येक भङ्ग में भिन्न-भिन्न तथ्यों की प्रधानता है। प्रत्येक भङ्ग वस्तु के भिन्न-भिन्न दृष्टिकोण को अभिव्यक्त करता है। इसलिए सप्तभङ्गी के सातों भङ्ग एक दूसरे से स्वतन्त्र हैं, किन्तु इससे यह नहीं समझना चाहिए कि सप्तभङ्गी के प्रत्येक कथन पूर्णतः निरपेक्ष हैं। वे सभी सापेक्ष होने से एक दूसरे से सम्बन्धित भी हैं; ऐसा मानना चाहिए। किन्तु जहाँ तक उनके परस्पर भिन्न होने की बात है, वहाँ तक तो वे अपने-अपने उद्देश्यों को लेकर ही परस्पर भिन्न हैं। इस प्रकार सप्तभङ्गी का प्रत्येक कथन परस्पर सापेक्ष होते हुए भी परस्पर भिन्न है। इसलिए प्रत्येक भङ्ग का अपना अलग-अलग मूल्य (Value) है।

अब यहाँ संक्षेप में 'मूल्य' (Value) शब्द को भी स्पष्ट कर देना आवश्यक है। आधुनिक तर्कशास्त्र में सभी फलनात्मक क्रियाएँ (Funtional Activlties) सत्यता मूल्यों (Truth Values) पर ही निर्भर करती हैं। आधुनिक तर्कशास्त्र के सभी फलन (Function) प्रकथन (Proposition) की सत्यता-असत्यता का निर्धारण करते हैं। आधुनिक तर्कशास्त्र यह मानता है कि प्रकथन जो किसी वस्तु या तथ्य के विषय में है, वह या तो सत्य है अथवा असत्य। सामान्य तर्कशास्त्र मूल रूप से इन्हीं दो कोटियों को मानता है। किन्तु आधुनिक तर्कशास्त्र के अनुसार सत्य-असत्य की भी अनेक कोटियाँ हो सकती हैं, जिन्हें भिन्न-भिन्न सत्यता मूल्यों से सम्बोधित किया जाता है। आधुनिक तर्कशास्त्र में उन्हीं मूल्यों की सत्यता मूल्य (Truth Value) करते हैं, जिस प्रकथन के सत्य होने की जितनी अधिक संभावना होती है, उसका उतना ही अधिक सत्यता मूल्य होता है। जैसे यदि कोई तर्कवाक्य (प्रकथन) पूर्णतः सत्य है, तो उसका सत्यता मूल्य पूर्ण होगा। उसे आधुनिक तर्कशास्त्र में सत्य (True) या '१' से सम्बोधित करते हैं और जो पूर्णतः असत्य है, उसे असत्य (False) अथवा '०' से सूचित किया जाता है। इसी प्रकार जो संभावित सत्य है, उसे उसकी संभावना के आधार पर १/२, १/३, १/४ आदि संख्याओं या संदिग्ध पद से अथवा किसी माडल से अभिव्यक्त किया जाता है। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि तर्कवाक्य में निहित सत्य की संभावना को सत्यता-मूल्य कहते हैं। यद्यपि असत्यता (Falsity) भी मूल्यवत्ता से परे नहीं है। असत्यता भी सत्यता (Truth) की ही एक कोटि है। जब सत्यता घट कर शून्य हो जाती है, तब वहाँ असत्यता का उद्भावन होता है। वस्तुतः असत्यता को सत्यता की अन्तिम कड़ी कहना चाहिए। इस असत्यता और सत्यता (जो कि सत्यता की पूर्ण एवं अन्तिम कोटि है) के बीच जो सत्य की संभावना होती है, उसको संभावित सत्य कहते हैं। इस प्रकार सत्य, असत्य आदि विभिन्न आयाम हैं। यहाँ हमें देखना यही है कि सप्तभङ्गी में इस तरह का सत्यता मूल्य प्राप्त होता है अथवा नहीं।

संभाव्यता तर्कशास्त्र में एक ऐसा सिद्धान्त है, जिसमें सप्तभङ्गी जैसी प्रक्रिया का प्रतिपादन किया गया है। उसमें A, B और C तीन स्वतन्त्र घटनाओं के आधार पर चार सांयोगिक घटनाओं

१. सप्तभंगीतरंगिणी, पृ० ९।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

का विवेचन किया गया है। जिस प्रकार सप्तभङ्गी में अस्ति, नास्ति और अवक्तव्य के संयोग से चार यौगिक भंग प्राप्त किये गये हैं, उसी प्रकार संभाव्यता तर्कशास्त्र में A, B और C तीन स्वतन्त्र घटनाओं से चार युग्म घटनाओं को प्राप्त किया गया है, जो इस प्रकार है—

$$P(AB) = P(A).\ P(B)$$
$$P(AC) = P(A).\ P(C)$$
$$P(BC) = P(B).\ P(C)$$
$$P(ABC) = P(A)\cdot P(B).\ P(C)$$

यहाँ P = संभाव्य और A, B और C तीन स्वतन्त्र घटनायें हैं। यद्यपि सप्तभङ्गी के सभी भङ्ग न तो स्वतन्त्र घटनायें हैं और न सप्तभंगी का 'स्यात्' पद संभाव्य ही है, तथापि सप्तभंगी के साथ उपर्युक्त सिद्धान्त की आकारिक समानता है। इसलिए यदि उक्त सिद्धान्त से 'आकार' ग्रहण किया जाय तो सप्तभङ्गी का प्रारूप हू-बहू वैसा ही बनेगा जैसा कि उपर्युक्त सिद्धान्त का है। यदि सप्तभङ्गी के मूलभूत भङ्गों, स्यादस्ति, स्यान्नास्ति और स्यादवक्तव्य को क्रमशः A,—B और—C तथा परिमाणक रूप 'स्यात्' पद को P और च को डाट (.) से प्रदर्शित किया जाय, तो सप्तभङ्गी के शेष चार भङ्गों का प्रारूप निम्नवत् होगा—

$$\text{स्यादस्ति च नास्ति} = P(A\cdot—B) = P(A)\cdot P(—B)$$
$$\text{स्यादस्ति च अवक्तव्य} = P(A.—C) = P(A).\ P(—C)$$
$$\text{स्यान्नास्ति च अवक्तव्य} = (P—B—C) = P(—B).\ P(—C)$$
$$\text{स्यादस्ति च नास्ति च अवक्तव्य} = P(A.—B\cdot—C) = P(A)\cdot P(—B).\ P(—C)$$

इस प्रकार सम्पूर्ण सप्तभङ्गी का प्रतीकात्मक रूप इस प्रकार होगा—

(१) स्यादस्ति = P (A)
(२) स्यान्नास्ति = P (—B)
(३) स्यादस्ति च नास्ति = P (A.—B)
(४) स्यात् अवक्तव्य = P (—C)
(५) स्यादस्ति च अवक्तव्य = P (A.—C)
(६) स्यान्नास्ति च अवक्तव्य = P (—B·—C)
(७) स्यादस्ति च नास्ति च अवक्तव्य = P (A.—B.—C)

प्रस्तुत विवरण में A स्वचतुष्टय, B परचतुष्टय और C वक्तव्यता के सूचक हैं, B और C का निषेध (—) वस्तु में परचतुष्टय एवं युगपत् व्यक्तव्यता का निषेध करता है। जैन तर्कशास्त्र की यह मान्यता है कि जिस तरह वस्तु में भावात्मक धर्म रहते हैं, उसी तरह वस्तु में अभावात्मक धर्म भी रहते हैं। वस्तु में जो सत्व धर्म हैं, वे भाव रूप हैं और जो असत्व धर्म हैं, वे अभाव रूप हैं। इसी भाव रूप धर्म को विधि अर्थात् अस्तित्व और अभाव रूप धर्म को प्रतिषेध अर्थात् नास्तित्व कहते हैं—

सदसदात्मकस्य वस्तुनो यः सदंशः—भावरूपः स विधिरित्यर्थः। सदसदात्मकस्य वस्तुनो योऽसदंशः अभावरूपः स प्रतिषेध इति। (प्रमाणनयतत्त्वालोक, ३/५६-५७)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वस्तुतः ये अस्तित्व और नास्तित्व एक ही वस्तु के भिन्न-भिन्न धर्म हैं, जो अबिनाभाव से प्रत्येक वस्तु में विद्यमान रहते हैं।

कहा भी गया है—

अस्तित्वं प्रतिषेध्येनाविनाभाव्येकधर्मिणि।
विशेषणत्वात् साधर्म्यं यथा भेदविवक्षया॥
नास्तित्वं प्रतिषेध्येनाविनाभाव्येकधर्मिणि।
विशेषणत्वाद्वैधर्म्यं यथाऽभेदविवक्षया॥

—आप्तमीमांसा, १।१७-१८।

अर्थात् वस्तु का जो अस्तित्व धर्म है, उसका अबिनाभावी नास्तित्व धर्म है। इसी प्रकार वस्तु का जो नास्तित्व धर्म है, उसका अबिनाभावी अस्तित्व धर्म है। इस प्रकार अस्तित्व के बिना नास्तित्व और नास्तित्व के बिना अस्तित्व की कोई सत्ता ही नहीं है। कहने का तात्पर्य यह है कि अस्तित्व और नास्तित्व दो ऐसे धर्म हैं, जो प्रत्येक वस्तु में अबिनाभाव से विद्यमान रहते हैं। सप्तभङ्गी के अस्तित्व और नास्तित्व रूप दोनों भङ्गों में इन्हीं धर्मों का मुख्यता और गौणता से विवेचन किया जाता है। ये दोनों एक दूसरे के विरोधी या निषेधक नहीं हैं। अस्तित्व धर्म दूसरे, तो नास्तित्व धर्म दूसरे हैं। इसीलिए इनमें अविरोध सिद्ध होता है। स्याद्वादमञ्जरी में (पृ० २२६) में कहा गया है, "जिस प्रकार स्वरूपादि से अस्तित्व धर्म का सद्भाव अनुभव सिद्ध है, उसी प्रकार पररूपादि के अभाव से नास्तित्व धर्म का सद्भाव भी अनुभव सिद्ध है। वस्तु का सर्वथा अस्तित्व अर्थात् स्वरूप और पररूप से अस्तित्व—उसका स्वरूप नहीं है, क्योंकि जिस प्रकार स्वरूप से अस्तित्व वस्तु का धर्म होता है, उसी प्रकार पररूप से भी अस्तित्व वस्तु का धर्म नहीं बन जावेगा। वस्तु का सर्वथा नास्तित्व अर्थात् स्वरूप और पररूप से नास्तित्व भी उसका स्वरूप नहीं है; क्योंकि जिस प्रकार पररूप से नास्तित्व वस्तु का धर्म होता है, उसी प्रकार स्वरूप से भी नास्तित्व वस्तु का धर्म नहीं बन जावेगा। इसलिए अस्तित्व और नास्तित्व दोनों ही धर्मों से युक्त रहना वस्तु का स्वभाव या स्वरूप है अर्थात् वस्तु में स्वचतुष्टय का भाव और परचतुष्टय का अभाव होता है। अतः इन धर्मों को एक दूसरे का निषेधक या व्याघातक (कान्ट्राडिक्टरी) नहीं कहा जा सकता है।

किन्तु जब इन भावात्मक और अभावात्मक धर्मों के कहने की बात आती है, तब हम स्वचतुष्टय रूप वस्तु के भावात्मक गुण धर्मों को एक शब्द 'स्यादस्ति' से कह देते हैं और जब पर-चतुष्टय रूप वस्तु के अभावात्मक गुण-धर्मों को कहने की बात आ जाती है, तब उन्हें 'स्यान्नास्ति' शब्द से सम्बोधित करते हैं। किन्तु जब उन्हीं धर्मों को एक साथ (युगपद् रूप से) कहना होता है, तब उन्हें अवक्तव्य ही कहना पड़ता है। वस्तुतः अस्ति, नास्ति और अवक्तव्य ये ही सप्तभङ्गी के तीन मूल भंग हैं।

अब वस्तु में स्वचतुष्टय रूप भावात्मक धर्मों को A, परचतुष्टय रूप धर्मों को B और उनके अभाव को —B तथा स्वचतुष्टय और परचतुष्टय रूप भावात्मक धर्मों को युगपत् रूप से कहने में भाषा की असमर्थता अर्थात् अवक्तव्यता को —C से प्रदर्शित करें और स्यात् पद को P से दर्शायें, तो तीनों मूल भङ्गों का प्रतीकात्मक रूप इस प्रकार होगा—

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

स्यादस्ति = P (A)
स्यान्नास्ति = P (—B)
स्यादवक्तव्य = P (—C)

इस प्रकार प्रथम भङ्ग में स्वचतुष्टय का सद्भाव होने से उसे भावात्मक रूप में A कहा गया है। दूसरे भङ्ग में परचतुष्टय का निषेध होने से अभावात्मक रूप में —B कहा गया गया है और तीसरे मूल भङ्ग में वक्तव्यता का निषेध होने से —C कहा गया है। इस प्रकार सप्तभङ्ग के प्रतीकीकरण के इस प्रयास का अर्थ उसके मूल अर्थ के निकट बैठता है।

अब विचारणीय विषय यह है कि स्यान्नास्ति भङ्ग का वास्तविक प्रारूप क्या है ? कुछ तर्कविदों ने उसे निषेधात्मक बताया है तो कुछ दार्शनिकों ने स्वीकारात्मक माना है और किसी-किसी ने तो द्विधा निषेध से प्रदर्शित किया है। इस सन्दर्भ में डा० सागरमल जैन के द्वारा प्रदत्त नास्तिभङ्ग का प्रतीकात्मक प्रारूप द्रष्टव्य है। उन्होंने लिखा है कि नास्तिभंग के निम्नलिखित चार प्रारूप बनते हैं—

(१) अ^{२} ⊃ उ$_{१}$ वि$_{१}$ नहीं है।
(२) अ^{२} ⊃ उ$_{१}$—वि$_{१}$ है।
(३) अ^{१} ⊃ उ$_{१}$—वि$_{१}$ नहीं है (यह द्विधा निषेध रूप है)।
(४) अ^{२} ⊃ उ$_{१}$ नहीं है।

इनमें भी मुख्य रूप से दो ही प्रारूपों को माना जा सकता है—एक वह है, जिसमें स्यात् पद चर है। जिसके कारण अपेक्षा बदलती रहती है। यदि चर रूप स्यात् पद को P^1, P^2 आदि से दर्शाया जाये, तो अस्ति और नास्ति भंग का निम्नलिखित रूप बनेगा—

(१) स्यादस्ति = P^1 (A)
(२) स्यान्नास्ति = P^2 (—A)

इसे निम्नलिखित दृष्टान्त से अच्छी तरह समझा जा सकता है—स्यात् आत्मा नित्य है (प्रथम भंग) और स्यात् आत्मा नित्य नहीं है (द्वितीय भंग), इन दोनों कथनों में अपेक्षा बदलती गई है। जहाँ प्रथम भंग में द्रव्यत्व दृष्टि से आत्मा को नित्य कहा गया है, वहीं दूसरे भंग में पर्याय दृष्टि से उसे अनित्य (नित्य नहीं) कहा गया है। इन दोनों ही वाक्यों का स्वरूप यथार्थ है, क्योंकि आत्मा द्रव्यदृष्टि से नित्य है, तो पर्याय दृष्टि से अनित्य भी है। वस्तुतः यहाँ द्वितीय भंग का प्रारूप निषेध रूप होगा। अब यदि उक्त दोनों भंगों को मूल भंग माना जाये और अवक्तव्य को —C से दर्शाया जाये, तो सप्तभंगी का प्रतीकात्मक प्रारूप निम्नलिखित रूप से तैयार होगा—

(१) स्यादस्ति = P^1 (A)
(२) स्यान्नास्ति = P^2 (—A)
(३) स्यादस्ति च नास्ति = P^3 (A· —A)
(४) स्यादवक्तव्य = P^4 (—C)
(५) स्यादस्ति च अवक्तव्यम् = P^5 (A· —C)
(६) स्यान्नास्ति च अवक्तव्यम् = P^6 (—A·—C)
(७) स्यादस्ति च नास्ति च अवक्तव्यम् = P^7 (A· —A · —C)

४

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अब प्रश्न यह है कि अवक्तव्य को —C से क्यों प्रदर्शित किया गया है ? इस प्रश्न का उत्तर है कि अवक्तव्य वक्तव्य पद का निषेधक है। पाश्चात्य तर्कशास्त्र में किसी निषेध पद को विधायक प्रतीक से दर्शाने का विधान नहीं है। वहाँ पहले विधायक पद को विधायक पद से दर्शाकर निषेधात्मक बोध हेतु उस विधायक पद का निषेध किया जाता है। इसलिए पहले वक्तव्य पद हेतु प्रतीक प्रस्तुत कर अवक्तव्य के बोध के लिए उस C का निषेध अर्थात् —C किया गया है। अब यदि यह कहा जाये कि ऐसा मानने पर सप्तभङ्गी-सप्तभङ्गी नहीं बल्कि अष्टभङ्गी बन जायेगा, तो ऐसी बात मान्य नहीं हो सकती; क्योंकि जैन तर्कशास्त्र में सप्तभङ्गी की ही परिकल्पना है, अष्टभङ्गी की नहीं; और वक्तव्य रूप भंग सप्तभङ्गी में इसलिए भी स्वीकार नहीं किया जा सकता कि अवक्तव्य के अतिरिक्त शेष भङ्ग तो वक्तव्य ही हैं अर्थात् वक्तव्यता का बोध सप्तभङ्गी के शेष भङ्गों से होता है। इसलिए वक्तव्य भङ्ग को स्वतन्त्र रूप से स्वीकारा नहीं जा सकता है। वह तो प्रथम अस्ति, द्वितीय नास्ति और तृतीय क्रम भावी अस्ति-नास्ति के रूप में उपस्थित ही है।

दूसरे दृष्टिकोण के अनुसार 'स्यात्' पद अचर है। उसके अर्थ अर्थात् भाव में कभी भी परिवर्तन नहीं होता है। वह प्रत्येक भंग के साथ एक ही अर्थ में प्रस्तुत है। इस प्रकार इस दृष्टिकोण को मानने से नास्ति भंग में द्विधा निषेध आता है, जिसका निम्न प्रकार से प्रतीकीकरण किया जा सकता है—

(१) स्यादस्ति = P (A)
(२) स्यान्नास्ति = P—(—A)

अब इसका यह प्रतीकात्मक रूप निम्नलिखित दृष्टान्त से पूर्णतः स्पष्ट हो जायेगा—

'स्यात् आत्मा चेतन है (प्रथम भंग) और स्यात् आत्मा अचेतन नहीं है' (द्वितीय भंग)। अब यदि हम 'आत्मा चेतन है' का प्रतीक A मानें, तो उसके अचेतन का —A होगा और इसी प्रकार 'आत्मा अचेतन नहीं है' का प्रतीक—(—A) हो जायेगा। इस प्रकार इन वाक्यों में हमने देखा कि वक्ता की अपेक्षा बदलती नहीं है। वह दोनों ही वाक्यों की विवेचना एक ही अपेक्षा से करता है। इस दृष्टिकोण से उपर्युक्त दोनों वाक्यों का प्रारूप यथार्थ है। अब यदि इन दोनों वाक्यों को मूल मानें, तो सप्तभङ्गी का प्रतीकात्मक प्रारूप निम्न प्रकार होगा—

(१) स्यादस्ति = P (A)
(२) स्यान्नास्ति = P—(—A)
(३) स्यादस्ति च नास्ति = P (A · —(—A))
(४) स्यादवक्तव्य = P(—C)
(५) स्यादस्ति च अवक्तव्य = P(A· —C)
(६) स्यात् नास्ति च अवक्तव्य = P(—(—A)· —C)
(७) स्यादस्ति च नास्ति च अवक्तव्य = P(A· —(—A)· —C)

इस प्रतीकीकरण में A और — —A वक्तव्यता के और —C अवक्तव्यता का भी सूचक है। किन्तु स्यादस्ति और स्यान्नास्ति को क्रमशः A और —A अथवा A और — —A मानना उपयुक्त प्रतीत नहीं होता है। क्योंकि नास्तिभङ्ग परचतुष्टय का निषेधक है और अस्तिभङ्ग स्वचतुष्टय का प्रतिपादक है। यदि उन्हें A और —A का प्रतीक दिया जाये, तो उनमें व्याघातकता प्रतीत होती है, जबकि वस्तुस्थिति इससे भिन्न है। अतः स्वचतुष्टय और परचतुष्टय के लिए अलग-अलग प्रतीक अर्थात् A और B प्रदान करना अधिक युक्तिसंगत है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हमने स्वचतुष्टय के लिए A और परचतुष्टय के निषेध के लिए—B माना है। मेरा यह दावा नहीं है कि मेरा दिया हुआ उपर्युक्त प्रतीकीकरण अन्तिम एवं सर्वमान्य है। उसमें परिमार्जन की संभावना हो सकती है। आशा है कि विद्वान् इस दिशा में अधिक गम्भीरता से विचार कर सप्तभङ्गी को एक सर्वमान्य प्रतीकात्मक स्वरूप प्रदान करेंगे, ताकि उसके सम्बन्ध में उठनेवाली भ्रान्तियों का सम्यक्रूपेण निराकरण हो सके।

अब सप्तभङ्गी की यह प्रतीकात्मकता संभाव्यता तर्कशास्त्र के उपर्युक्त प्रतीकीकरण के अनुरूप है। इसलिए यह उससे तुलनीय है। जिस प्रकार सप्तभङ्गी में उत्तर के चारों प्रकथन पूर्व के मूलभूत तीनों भंगों के सांयोगिक रूप हैं और प्रत्येक कथन को 'च' रूप संयोजन के द्वारा जोड़ा गया है, उसी प्रकार संभाव्यता तर्कशास्त्र के उपर्युक्त सिद्धान्त में तीन मूलभूत भङ्गों की कल्पना करके आगे के भंगों की रचना में संयोजन अर्थात् कन्जंक्शन का ही पूर्णतः व्यवहार किया गया है। जिस क्रम में सप्तभंगी की विवेचना और विस्तार है, उसी क्रम का अनुगमन संभाव्यता तर्कशास्त्र का उक्त सिद्धान्त भी करता है। एक रुचिकर बात यह है कि सप्तभंगी के सातवें भंग में क्रमार्पण और सहार्पण रूप तीसरे और चौथे भंग का संयोग माना गया है। इस संदर्भ में सप्तभंगीतरंगिणी का निम्नलिखित कथन द्रष्टव्य है—'अलग-अलग क्रम योजित और मिश्रित रूप अक्रम योजित द्रव्य तथा पर्याय का आश्रय करके 'स्यात् अस्ति नास्ति च अवक्तव्यश्च घटः' किसी अपेक्षा से सत्व-असत्व सहित अवक्तव्यत्व का आश्रय घट है—इस सप्तम भङ्ग की प्रवृत्ति होती है।' (पृ० ७२) इसका भाव यह है कि अस्ति और नास्ति भङ्ग के क्रमिक और अक्रमिक संयोग से अवक्तव्य भङ्ग की योजना है अर्थात् अस्ति और नास्ति के योजित रूप 'अस्ति च नास्ति' में अस्ति-नास्ति के अक्रम रूप अवक्तव्य को जोड़ा गया है। अब यदि अस्ति A है, नास्ति—B और अवक्तव्य—C है, तो सातवें भङ्ग का रूप होगा, A—B में —C का योग। जो संभाव्यता तर्कशास्त्र के उपर्युक्त सिद्धान्त के अन्तिम कथन से मेल खाता है।

जिस प्रकार सप्तभङ्गी में तीन मूल भङ्गों से चार ही यौगिक भङ्ग बनने की योजना है, उसी प्रकार संभाव्यता तर्कशास्त्र में भी तीन स्वतन्त्र घटनाओं के संयोग से चार सांयोगिक स्वतन्त्र घटनाओं की अभिकल्पना है। वस्तुतः ये सभी बातें जैन तर्कशास्त्र को स्वीकृत हैं। इसलिए इस प्रतीकात्मक प्रारूप को सप्तभङ्गी पर लागू किया जा सकता है।

अब सप्तभङ्गी की मूल्यात्मकता को निम्न रूप से चित्रित करने का प्रयास किया जा सकता है। यदि स्यादस्ति, स्यान्नास्ति और स्यादवक्तव्य अर्थात् A,—B और—C को एक-एक वृत्त के द्वारा सूचित किया जाये, तो उन वृत्तों के संयोग से बनने वाले सप्तभङ्गी के शेष चार भङ्गों के क्षेत्र इस प्रकार होंगे—

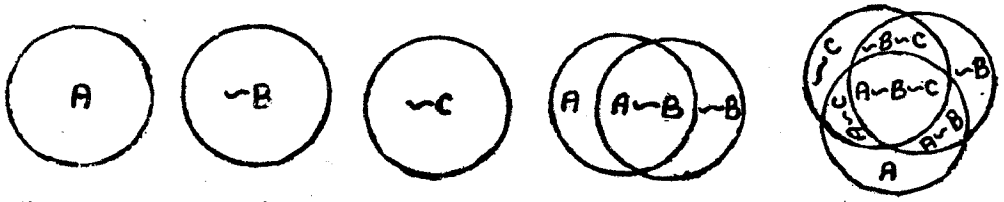

चित्र- 1 2 3 4 5

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अब चित्र संख्या ५ को देखने से स्पष्ट हो जायेगा कि A,—B,—C, A—B, A—C,—B—C और A—B—C का क्षेत्र अलग-अलग है। जिसके आधार पर सप्तभङ्गी के प्रत्येक भङ्ग की मूल्यात्मकता और उनके स्वतन्त्र अस्तित्व का निरूपण हो सकता है। यद्यपि सप्तभङ्गी का यह चित्रण वेन डाइग्राम से तुलनीय नहीं है, क्योंकि यह उसके किसी भी सिद्धान्त के अन्तर्गत नहीं है, तथापि यह चित्रण सप्तभङ्गी की प्रमाणता को सिद्ध करने के लिए उपयुक्त है।

सांयोगिक कथनों का मूल्य और महत्त्व अपने अङ्गीभूत कथनों के मूल्य और महत्त्व से भिन्न होता है। इस बात की सिद्धि भौतिक विज्ञान के निम्नलिखित सिद्धान्त से की जा सकती है—

कल्पना कीजिए कि भिन्न-भिन्न रंग वाले तीन प्रक्षेपक अ, ब और स इस प्रकार व्यवस्थित हैं कि उनसे प्रक्षेपित प्रकाश एक दूसरे के ऊपर अंशतः पड़ते हैं, जैसा कि चित्र में दिखलाया गया है—

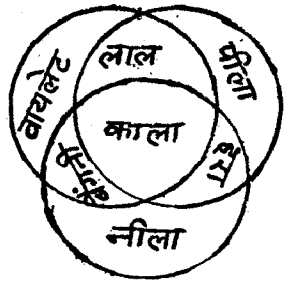

प्रत्येक प्रक्षेपक से निकलने वाले प्रकाश को हम एक अवयव मान सकते हैं। क्षेत्र अ, ब और स एक रंग के प्रकाश से प्रकाशित हैं और क्षेत्र अ+ब, ब+स और अ+स दो-दो अवयवों से प्रकाशित हैं। जबकि बीचवाला भाग जो तीन अवयवों से प्रकाशित है। उसे अ+ब+स क्षेत्र कह सकते हैं। उस भाग को जो रंगों के प्रकाश से प्रकाशित है, मिश्रण कहते हैं। क्योंकि प्रकाशित भाग अ,ब और स तीनों से प्रकाशित होता है। जैसे ही तीनों अवयवों में से कोई अवयव बदलता है, मिश्रण का रंग बदल जाता है और किसी भी रंग वाले भाग में से उसके अवयवों को पहचाना नहीं जा सकता है। वस्तुतः वह दूसरे रंग को जन्म देता है, जो उसके अङ्गीभूत अवयवों से भिन्न होता है। उस मिश्रण को उसके अवयवों में से किसी एक के द्वारा सम्बोधित नहीं किया जा सकता है। अतएव उन्हें मिश्रण कहना ही सार्थक है। रंगों का ज्ञान भी कुछ इसी प्रकार का है। यदि हम पीला, नीला और वायलेट को मूल रंग मानकर मिश्रित रंग तैयार करें, तो वे इस प्रकार होंगे—

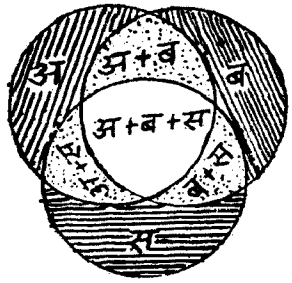

नीला + पीला = हरा
पीला + वायलेट = लाल
वायलेट + नीला = बैंगनी
हरा + बैंगनी + लाल = काला

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इस प्रकार तीन मूलभूत रंगों के संयोग के चार ही मिश्रित रंग बनते हैं। इन मिश्रित रंगों का अस्तित्व अपने मूल रंगों के अस्तित्व से भिन्न है। इसलिए इन्हें मूलरंगों के नाम से अभिहित नहीं किया जा सकता है। ठीक यही बात स्याद्वाद के संदर्भ में भी है। यद्यपि सप्तभङ्गी के उत्तर के चार भङ्ग पूर्व के तीन मूलभूत भङ्गों के संयोग मात्र ही हैं, किन्तु वे सभी उक्त तीनों भङ्गों से भिन्न हैं। इसलिए उनके अलग-अलग मूल्य हैं। इस प्रकार सप्तभङ्गी के सातों भङ्ग अलग-अलग मूल्य प्रदान करते हैं। इसलिए सप्तभङ्गी सप्तमूल्यात्मक है, ऐसा मानना चाहिए।

—दर्शन विभाग, एस० सिन्हा कालेज, औरंगाबाद (बिहार)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org